जीएम फसलों की बहसः सहमति बनाम विरोध

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

आम तौर पर, व्यक्तियों और समूहों के बीच मतभेदों को सुलझाने के दो तरीके होते हैं। एक है शत्रुता का तरीका, जिसे राष्ट्रों के बीच युद्ध में अपनाया जाता है, विरोधी पक्षों द्वारा अदालत में अपनाया जाता है और प्रजातंत्र में सत्ता पक्ष और विपक्षी दलों के बीच अपनाया जाता है। इन सारे मामलों में जब कोई जीतता है, तो कोई पराजित भी ज़रूर होता है, और इसलिए यह शून्य-योग का खेल होता है। खेलकूद में भी प्रतिस्पर्धा होती है मगर उसमें खिलाड़ी और दर्शक सबको मज़ा आता है।

दूसरी ओर, विज्ञान में दृष्टिकोण की स्थापना प्रतिस्पर्धा के ज़रिए नहीं बल्कि आम सहमति के ज़रिए होती है। वैज्ञानिक क्रियाकलाप की एक विशेषता है जिसे हर गंभीर वैज्ञानिक तो मानकर चलता है मगर आम लोग इसके बारे में नहीं जानते; वह विशेषता है समकक्ष समीक्षा या *पीयर रिव्यू*। इसका मतलब है किसी भी विषय में काम कर रहे लोगों के समूह द्वारा समीक्षा। समकक्ष समीक्षा वैज्ञानिक विमर्श में आम सहमति के तरीके का साकार रूप है।

विज्ञान एक मानवीय गतिविधि है जो अज्ञात की सरहदों पर चलती है। लिहाज़ा वैज्ञानिक मानते हैं कि किसी भी नए ज्ञान का आकलन व मूल्यांकन उन लोगों द्वारा किया जाएगा जो इन सरहदों पर काम कर रहे हैं यानी समकक्ष लोग। अतः स्वयं अपना अनुसंधान कार्य करने के साथ-साथ वैज्ञानिकों पर एक अतिरिक्त दायित्व यह भी होता है कि वे अपने समकक्ष लोगों के काम की समीक्षा के लिए तैयार रहें। समीक्षक आलोचक होते हैं, शत्रु नहीं। और जब वे उस शोध कार्य को करने वाले वैज्ञानिक के साथ किसी सहमति पर पहुंचते हैं, तभी उस शोध को प्रकाशित करके सारी दुनिया को बताया जा सकता है। वैसे समकक्ष समीक्षा छोटी-मोटी खामियों से पूरी तरह मुक्त नहीं है।

जब इस तरह से वैज्ञानिक प्रगति होती है, तो प्रतिस्पर्धा के शून्य-योग वाले खेल के विपरीत, सब लोग विजेता होते हैं। जहां प्रतिस्पर्धा में तर्क की शुरुआत पक्षों के बीच अविश्वास से होती है, वहीं सहमतिजनक तर्क विश्वास की मान्यता पर टिका होता है और समस्त पक्षों से उम्मीद की जाती है कि वे अपने हितों में कोई टकराव होने पर उसकी स्पष्ट घोषणा करेंगे। लिहाज़ा वैज्ञानिक तब सबसे सहज महसूस करते हैं जब वे सहमतिजनक बहस में शरीक होते हैं। विशेषज्ञों के बीच आम सहमति का मतलब यह नहीं होता कि सब एकमत हो जाएं। इसका मतलब होता कि यदि वे असहमत हों, तो इस असहमति के कारणों पर सहमति हो।

इस पृष्ठभूमि में, यह चिंता का विषय है कि हमारे देश में जिनेटिक रूप से परिवर्तित (जीएम) फसलों और खाद्य पदार्थों की बहस सहमतिजनक तरीका छोड़कर शत्रुता के रास्ते पर चल पड़ी है। इसके अलावा, अकादमिक वैज्ञानिकों को अपरिचित भाषा व अपरिचित मैदान पर बहस में खींचा गया है। इस बहस की शर्तें एक्टिविस्ट और आम जनता द्वारा निर्धारित की जा रही है। पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश ने पिछले वर्ष देश भर में बीटी बैंगन को लेकर जो चर्चाएं कीं, उनका अनुभव यही रहा है।

वैज्ञानिकों को तख्तियां उठाने, नारे लगाने, भीड़ इकट्ठी करने या अपने तथाकथित विरोधियों को नीचा दिखाने का प्रशिक्षण नहीं मिलता है। लिहाज़ा वैज्ञानिक एक्टिविस्ट रणनीतियों और कार्रवाइयों की बराबरी करने में असफल रहे हैं। दरअसल, इस देश के वैज्ञानिकों को पहली बार उस सबका सामना करना पड़ रहा है, जो विकसित दुनिया के वैज्ञानिक काफी पहले से करते आए हैं। जैसे डार्विनवाद बनाम सृष्टिवाद की बहस में यही होता रहा है।

इस मामले में भी सहमतिजनक तरीके का तकाज़ा होगा कि तर्क के दोनों सिरों के लोग तर्क के दोनों पहलुओं को निष्पक्ष ढंग से जांचे-परखें; विरोध के तरीके में दोनों पक्ष एक-दूसरे के दृष्टिकोण को नकारने या अनदेखा करने का प्रयास करते हैं। यही स्थिति कानून तंत्र की भी है (जबकि

उसका मुख्य उद्देश्य सत्य को उजागर करना है)। मगर दिक्कत यह है कि यदि एक पक्ष अपना मत ठीक से व्यक्त न कर पाए, तो एक ऐसा निर्णय हो जाएगा जो सत्य पर आधारित नहीं होगा। इस मामले में अदालत द्वारा नियुक्त अदालत-मित्र (*एमिकस क्यूरी*) प्रणाली दर्शाती है कि कानून प्रणाली में परंपरागत प्रतिस्पर्धा वाले तरीके से आगे बढ़ने की कोशिश हो रही है।

एक बात यह है कि एक्टिविस्ट तो जीएम फसलों के पक्ष व विरोध में जो भी तर्क होते हैं, उन्हें सच-झूठ की श्रेणी में रखते हैं, वैज्ञानिक ऐसा नहीं कर पाते। लिहाज़ा, यदि कोई वैज्ञानिक संतुलित विचार विमर्श के बाद जीएम जीवों के औद्योगिक उपयोग या पर्यावरण में उन्हें मुक्त करने का पक्ष लेता है, तो भी वह दोटूक शब्दों में यह नहीं कह पाएगा कि ऐसा करना एकदम सुरक्षित होगा। अधिक से अधिक वह इतना ही कहेगा कि इसके असुरक्षित होने का कोई प्रमाण नहीं है।

वैज्ञानिकों की उक्त सावधानी अकारण नहीं है। यदि कोई शब्द दहला देता है, वैज्ञानिक शोध से उत्पन्न प्रतिकूल घटना का भय पैदा करता है, तो वह शब्द फ्रेन्केस्टाइन नहीं है। वह शब्द है थेलिडोमाइड। बीसवीं सदी में थेलिडोमाइड नामक दवा का उपयोग गर्भावस्था की पहली तिमाही में होने वाली मितली के उपचार में किया गया था। इसकी वजह से हज़ारों विकलांग बच्चे पैदा हुए थे - ऐसे बच्चे जिनके हाथ-पैर बुरी तरह से विकृत थे। किसी भी वैज्ञानिक प्रगति के पूरी तरह खतरा-मुक्त होने की कोई गारंटी नहीं है।

फिर भी, एक संतुलित नज़रिया वैज्ञानिकों को सिक्के का दूसरा पहलू देखने में मदद करता है। जिनेटिक रूप से परिवर्तित जीव निर्मित करने की टेक्नॉलॉजी 1970 के दशक में आई थी। तब से इसके उपयोग से कैंसर, हृदय रोग, स्ट्रोक, गुर्दों की बीमारियों वगैरह के लिए औषधियां बनाई गई हैं। इसकी मदद से हेपेटाइटिस व दस्त के टीके भी बनाए गए हैं। इन खोजों ने बगैर किसी हानि के लाखों जीवन बचाने में मदद की है। प्रतिस्पर्धात्मक रवैया कई बार मुद्दों में घालमेल का भी कारण बनता है। जैसे जीएम फसलों से जुड़े स्वास्थ्य व पर्यावरण सम्बंधी खतरों को किसानों के शोषण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बढ़ती ताकत वगैरह के मुद्दे से जोड़ना इसका एक उदाहरण है।

जब यह बताया जाता है कि यू.एस. ने पिछले दो दशकों से जीएम खाद्य पदार्थों को स्वीकार किया हुआ है और स्वास्थ्य पर इसके कोई प्रतिकूल असर नहीं हुए हैं, तो यह कहा जाता है कि वह देश तो पूंजीवाद और मुनाफाखोर कंपनियों का गढ़ है। यह मानना मुश्किल है कि उस देश की नियमन संस्थाओं का मकसद अपने नागरिकों के स्वास्थ्य की हिफाज़त करने के अलावा कुछ और होगा। वास्तव में इन्हीं नियामक संस्थाओं द्वारा बरती गई सावधानी ने यू.एस.ए. में लोगों को थेलिडोमाइड के खतरे से बचाया था।

अंततः, अकादमिक वैज्ञानिकों को कई मर्तबा अपनी बंद प्रयोगशालाओं में से बाहर आकर अपने क्षेत्र के विशेषज्ञों के तौर पर सामाजिक विमर्श में भाग लेने को कहा जाता है। अलबत्ता, यह तभी हो सकता है जब जीएम फसलों जैसे विवाद के मुद्दों पर एक सहमतिजनक तरीका अपनाया जाए। वैज्ञानिक बंद प्रयोगशालाओं से बाहर नहीं आते, तो कारण यह नहीं है कि वे चिंतित नहीं हैं या सामाजिक दायित्व से बेखबर हैं। कारण यह है कि वे अपने काम में इतने डूबे होते हैं कि उनके लिए समय देना मुश्किल होता है। लिहाज़ा अधिकांश वैज्ञानिक चाहेंगे कि उन्हें अपना शोध कार्य करने दिया जाए। वे ऐसी गतिविधि में हिस्सा नहीं लेना चाहेंगे जहां कुछ हासिल होने वाला नहीं है। उनके लिए संवाद में जुड़ने के लिए एक सहमतिजनक तरीका ज़्यादा अनुकूल होगा।

मैं तो सबसे अनुरोध करूंगा कि इस बहस के वैज्ञानिक मुद्दों को सुलझाने के लिए एक सहमतिजनक रास्ता अपनाएं। और कुछ नहीं तो यह ज़्यादा सभ्य तरीका तो है ही। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत आपकी अपनी पत्रिका